शादीख़ाना आबादी

सैय्यिदुल उलमा आयतुल्लाहिल उज़मा सै0 अली नक़ी नक़वी

ख़ुदावन्दे आलम फ़रमाता है कि तुम में से जो मर्द ऐसे हों जिनकी औरतें मौजूद न हों और तुम में से जो औरतें ऐसी हों जिनके मर्द न हों उनकी शादी करो अगर वह फक़ीर होंगे तो ख़ुदा अपने करम से मालदार कर देगा। ख़ुदा के यहाँ बड़ी वुस्अत है और वह हर एक एक के हक़ की मिक़दार को जानने वाला है।

इसमें हिदायत की जा रही है और हुक्म दिया जा रहा है शादी के निज़ाम (सिस्टम) को बाक़ी रखने का जिस पर दुनिया में इन्सानियत के बाक़ी रहने की बुनियाद है। क्योंकि इस्लाम दुनिया में इन्सान की आबादी को बढ़ाने और तरक़्क़ी देने के लिए आया था वह उन चीज़ों को पसन्द नहीं करता जो इस दुनिया को बर्बाद कर देने की वजहें हैं बल्कि वह दुनियावी ज़रूरतों को भी क़ायदे और क़ानून में गिरफ्तार करके मज़हबी फर्ज़ की हैसियत दे देता है।

अक़्द के जुमले

यह इस्लाम का अक़्लमन्दी वाला वह रवैय्या है जिसने दुनिया के कामों में भी रूहानियत का पहलू पैदा कर दिया है और फ़र्ज़ के एहसास का जौहर डाल दिया है। वह चीज़ें जो देखने में अपने आपको आराम देने के लिए की जाती है और अपनी चाहत के लिए होती है उनमें ऐसी पाबंदियाँ लगा दी हैं कि इन्सान ऐसे वक़्त में भी अपने मालिक की याद को नहीं भुलाता और उसे अपनी ''बन्दगी'' का ख़याल रहता है जो फ़र्ज़ के एहसास का ख़ास जौहर है।

यही राज़ है जो अक़्द के जुमलों में छुपा हुआ है। यह समझना ठीक नहीं है कि इन जुमलों में कोई इस तरह का असर है कि जैसा मन्तरों में होता है या वैसी ख़ासियत है जैसी दवाओं में होती है। बल्कि इन लफ्ज़ों से इन्सान के दिल में फराएज़ की पाबन्दी और मालिक की इताअत का एहसास पैदा किया है। देखिये तो कि जिस वक़्त इन्सान की चाहतें उसे घेरे होती हैं तो इन्सान जैसे अन्धा हो जाता है। मगर फिर भी अगर उस वक़्त फौरन उसको यह ख़याल पैदा हो गया कि जब तक यह अलफाज़ न जारी किये जाएं हमारे लिये कोई कोई बहाने की सूरत नहीं है तो इसके माने यह हैं कि वह ऐसे वक़्त में भी अपने खुदा को नहीं भूला। लिबास में, खाने–पीने में और ख़ास ज़िन्दगी की ज़रूरतों में शरीअत की तरफ से बहुत सी पाबन्दियाँ इसी उसूल की बुनियाद पर की गई हैं।

इन्सान निकाह करता है अपनी ज़ात की चाहत से मगर खुदा के अह्काम भी याद रखता है इसकी वजह से एक तरफ अपनी चाहतें पूरी होती हैं तो दूसरी तरफ इबादत का सवाब हासिल होता है।

यह हज़रत ईसा (अ0) की तालीम थी जैसा कि इन्जील में है कि ''ख़ुदा की बादशाहत में दाख़िल नहीं होगा जिसने शादी कर ली।'' लेकिन रसूले ख़ुदा हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा (स0) की तालीम यह है कि ''निकाह मेरी सुन्नत में

दाख़िल है जो मेरी सुन्नत से हटेगा वह मुझसे ताल्लुक़ नहीं रखता।'' मगर सुन्नत से अलग होने के मानी यह हैं कि इन्सान उसे एतेराज़ के क़ाबिल समझे। अगर किसी मजबूरी की वजह से कोई शख़्स निकाह न करे तो वह इसमें दाख़िल नहीं है।

और ज़ोर दिया कि ''शादी करो और इन्सानी नस्ल को बढ़ाओ, मैं तुम्हारी बढ़ोत्तरी पर फख़्र करूँगा क़यामत के दिन।''

शादी में रोकी गई चीज़ों का होना

लेकिन अगर इन्सान ने अक़्दे निकाह या कोई तक़रीब (Function) इस तरह की कि ख़ुदा के भुलाने का ज़रिया बनी तो इस्लाम का मक़सद हासिल न होगा। दुनिया में शादी को हक़ीक़त में एक नेमत समझना चाहिए।

यह वक़्त आया कि औलाद हुई, मन्नतें मानी जाती हैं। दुआएँ माँगी जाती हैं, काहे के लिए? वह दिन आए कि बच्चा जवान हो और शादी का वक़्त आए। ख़ुदा के फ़ज़्ल से बच्चा जवान हुआ। माँ–बाप के दिल से पूछिये कि उनको उसकी शादी की कितनी तमन्ना है और कितनी उम्मीद। वह माँ–बाप जो दुनियावी ज़िन्दगी से मुसीबतों और परेशानियों की वजह से आजिज़ हों उनसे भी अगर पूछिये कि दुनिया में रहने को जी चाहता है? तो वह भी कहेंगे कि इस बच्चे का सेहरा देख लें। ख़ासकर जब लड़की की शादी में देर हो तो माँ–बाप को बड़ी फ़िक्र पैदा हो जाती है। यह और बात है कि शादी के वक़्त वह रोते हैं इसलिए कि उनकी लड़की उनसे छुट जाएगी मगर जब देर होती है तो बेचैनी होती है कि कहीं जल्दी से शादी हो जाए इसके लिए बहुत दुआएँ की जाती हैं। कुछ वह जो शरीअत के हिसाब से हैं और कुछ वह जो बिलकुल बेहूदा हैं।

जैसे बारह बजे रात को कोठे पर जाना, किसी तरह से आवाज़ का बुलन्द करना, शहदरे वाली मस्जिद में लड़कियों का भेजना, जिनकी ज़बान से शादी का निकलना बुराई समझा जाए। मगर इस रस्म के अदा करने के लिए वह लड़की भेजी जाए और ख़ास रस्म अन्जाम दी जाए। मैंने सुना है कि इस बारे में बहुत से अफसोसनाक वाक़ेआत भी हो जाते हैं। मेरा यह मतलब है कि शादी कितनी तमन्नाओं और आरज़ुओं से होती है फिर जब ख़ुदा ने अपनी मेहरबानी व करम से यह दिन दिखलाया और ऐसे रास्ते बनाए और ऐसी सूरतें पैदा कीं जिनकी वजह से यह दिन आया तो इस सरकश इन्सान को यह ज़िद है कि तो सही जो तेरी नेमत ही को तेरे गुनाह का बहाना बनाऊँ।

रातें गुज़र रही हैं, गाने वाले और गाने वालियाँ (यह गाने वाले, मुज़क्कर के लिए नहीं, वह गाने वाले भी मोअन्नस हैं) यानी गाने वालों की टोली और गाने वालियों की टोलियाँ, वह इकटठा होते हैं। इसके बाद वह कुछ होता है जो इससे पहले कभी नहीं हुआ था। यह किस बात पर? यह इसलिए कि ख़ुदा ने यह दिन दिखाया कि लड़के या लड़की की शादी हुई। क़ुर्आन मजीद में इरशाद है– ''अगर तुम हमारी नेमतों का शुक्र अदा करोगे तो हम और ज़्यादा नेमतें अता करेंगे और अगर नेमतों की नाशुक्री करोगे तो सज़ा भी सख़्त देंगे।'' मगर अफसोस हमारे यहाँ बहुत से लोग ख़ुदा की नेमत पर उसका शुक्रिया अदा करने के बजाए उसकी नाफरमानी करते हैं।

बच्चा पैदा हुआ, लड़के या लड़की की

पैदाइश हुई। रत्जगा होगा, इसमें भी वह कुछ होगा जो ख़ुदा की नाराज़गी की वजह हो। इसका नतीजा है कि नेमतें ख़त्म होती जाती हैं। इसी का नतीजा है कि बरकत नहीं होती, मिल्लत के आलिमों ने रोका है कि नाच गाना नाजाएज़ है। बहुत से लोगों ने नहीं माना। मगर जब दौलत न रही तब आलिमों के फ़तवे को बहाना बनाते हैं अपनी मुहताजी पर। अब ''इस्मते बीबी बे चादरी'' उलमा अल्लाह से क़रीब होने की वजह से निकाह पढ़ा भी जाएँ मगर नाच गाने वाले न आएंगे बिना रुपया लिये हुए जब रुपया नहीं है तो नाचने वाले भी ग़ायब। अब जो आपसे पूछा गया तो आप फरमाते हैं उलमा ख़िलाफ हैं इसलिए हमने इस रस्म को रोक दिया। हम तो ख़ुश हैं कि ख़ैर इसी बहाने से सही ख़ुदा तो याद आया। यह हक़ीक़त में इन्सान का नेमत को न पहचानना और अपनी ज़िन्दगी के फ़रीज़ों का ख़याल न रखना है।

रस्मों की ग़ैर ज़रूरती पाबन्दी

वह रस्में जो बाप–दादा के वक़्त से चली आती हैं। वह इतनी ज़रूरी समझ ली गई हैं कि जैसे, उनके बिना निकाह सही ही नहीं हो सकता। रस्मों को तैय नहीं किया जा सकता। वह मुल्कों में नहीं शहरों में बदलती हैं। शहरों में नहीं घरों में बदलती हैं। हर घर की कुछ ख़ास रस्में तैय की गई हैं।

शरीअत के ख़िलाफ रस्में

इनमें से कुछ रस्में शरीअत के ख़िलाफ हैं जिस तरह से कुछ घरों में यह रस्म है कि मेहंदी जो दुल्हा की बहनें होती हैं वह लगाती हैं। अगर वह बहनें हक़ीक़ी (सही) बहनें हैं तब तो जाएज़ है लेकिन हक़ीक़ी और ग़ैर हक़ीक़ी का तो सवाल ही नहीं है क्योंकि आपके यहाँ तो भाई, बहन, चचा, मामू वग़ैरा का रिश्ता इतना बढ़ा दिया गया है कि शरीअत की नज़र नहीं जा सकती। किसी से पूछिये कि यह आपके भाई हैं, कहेंगे जी हाँ ''होते हैं'' इसी तरह बहुत सी बहनें वह हैं जो बहन हैं नहीं, मगर बहन होती हैं यह भी मेहंदी के मौक़े पर शरीक होती हैं। उनका हाथ जिस्म में लगना नाजाएज़ है।

इसके बाद बहुत से घरानों में यह रस्म है कि जब दुल्हा का अक़्द हो जाता है तो वह अन्दर सलाम करने औरतों में जाता है तो उस वक़्त पर्दे का कोई ख़ास सवाल नहीं होता। अक़्द हो गया ना! कोई पर्दे का सवाल नहीं। उस वक़्त सब महरम हैं हालांकि अक़्द एक ही के साथ हुआ है। ऐसी ही मुमकिन है और भी रस्में हो जो शरीअत में जायज़ नहीं हैं।

बेजा और फालतू रस्में

वह चीज़ें जो ख़ास हैसियत से नाजाएज़ नहीं की जा सकतीं। बेजा ख़र्च में दाख़िल होकर और ज़िन्दगी की ज़रूरी चीज़ें बनकर तबाही की वजह बन्ती हैं। उन्हें इस तरह से ज़िन्दगी की ज़रूरत बना दिया गया है कि लड़कियाँ बैठी रह जाती हैं। अक़्द नहीं किया जाता इसलिए कि इतना रुपया नहीं कि सारी रस्में पूरी की जा सकें।

मंगनी

शुरुआत होती है मंगनी से। बेशक लड़के वालों का हक़ है लड़की वालों से बातचीत करें यानी शादी का पैग़ाम दें। इसमें ज़रूरत इस बात की है कि लड़के के अस्ली हालात जो हों, जो अस्ली उसकी आमदनी हो, वह लड़की वालों को बताया जाए। लेकिन आम तौर से उस वक़्त

ग़लत उम्मीदें बंधाई जाती हैं। यह ज़िन्दगी के लिऐ नुक़सान पहुँचाने वाला है अगर उसी वक़्त से सही हालात मालूम हों तो बाद में बुरे नतीजे का ख़तरा नहीं है। लेकिन अगर कुछ ग़लत हालात बयान करके और उम्मीदें क़ायम करके अक़्द कर दिया जाए जो बाद में ग़लत साबित हों तो इसकी वजह से बाद में बहुत अफसोसनाक नतीजे पैदा हो सकते हैं।

कुछ जगहों पर लड़के वाले इसकी आरज़ू करते हैं कि उस लड़की के साथ दहेज़ और माल के हासिल करने का इत्मिनान कर लें और यह पता करें कि लड़की को क्या मिलेगा? मेरी राय में यह बहुत ही नीची सोंच है। लड़की का खाना और ख़र्चा तो लड़के के ज़िम्मे है इसलिए लड़की वालों को ज़रूरत है कि वह लड़के की माली हालत की तरफ से इत्मिनान हासिल करें मगर लड़की के माल से शौहर को क्या मतलब? क्या वह यह चाहता है कि उसकी ज़िन्दगी औरत के माल और दौलत से गुज़रे? यह बहुत ही बेग़ैरती की बात है।

माँझा

अक़्द के पहले माँझा है। इसमें दुल्हा पर इतनी मुसीबत नहीं पड़ती लेकिन दुल्हन एक कोठरी में क़ैद करके बिठा दी जाती है। ज़र्द रंग के रंगे हुए कपड़े पहना दिये जाते हैं। इसके बाद रोका गया है कि वह बाहर न निकले। उसी कोठरी में रहना चाहिए।

अब ज़ाहिर है कि ज़माने के हालात इन्सान के ख़यालों के पाबन्द नहीं होते। अक्सर ऐसा इत्तफाक़ होता है कि जो दिन व तारीख़ तैय था वह टल गया। अब एक महीने बाद अक़्द होगा। मगर जब तक अक़्द न हो वह बेचारी उस कोठरी में रहेगी। रोज़ बटना मला जाएगा, रोज़ तेल मला जाएगा यहाँ तक कि अक़्द की तारीख़ आए। इस बीच अगर शरीअत के हिसाब से ज़रूरत की वजह से उसको पाक होना वाजिब भी हो तो हरगिज़ नहीं। उसे नहाना मना है। शरीअत का हुक्म इस मामले में कुछ नहीं समझा जाएगा, यह बिलकुल नाजाएज़ है और अगर शरीअत के हुक्म से टकराव नहीं है तब भी वह बेकार और तकलीफ देने वाली चीज़ है।

सान्चक़

कुछ घरों में सान्चक़ और बरी होती है। इसकी क्या सूरत है? मटकियाँ, मटकियों में दही मछलियाँ। यह सब वहाँ भेजा जाएगा इसके साथ जोड़े। यह कोई बुरी बात नहीं है लेकिन जोड़े वह होना चाहिएं जो लड़के के लिए आगे काम आएं लेकिन इसमें कुछ तो ख़ाली दिखावा है दसूरे यह कि अगर इतनी ताक़त नहीं है कि यह अन्जाम पा सके तो माँगे के जोड़े लिये जाते हैं किराये पर जोड़े लिये जाते हैं। चौथी का जोड़ा भारी होना चाहिए। वह चौथी का जोड़ा अक्सर माँगे या किराये का लिया जाता है। अब आप बतलाइये कि इज़्ज़त के लिए किया था या ज़िल्लत के लिए। ज़ाहिर है कि इज़्ज़त के लिए, तो जब वह चीज़ें जिसके यहाँ ये आई थीं वहाँ कल चली गईं तो इज़्ज़त कहाँ रही। जो कुछ भी मुमकिन हो आप से वह दे दीजिये इसमें ज़बरदस्ती दिखावे से कोई फायदा नहीं।

मंढा (ढाँकना/बन्द करना)

इसके बाद मंढा (ढाँकना/बन्द करना) होता है। यह शाल से मंढा जाता है। इसके नीचे एक जगह पर दुल्हन बिठाई जाती है और मालूम नहीं क्या–क्या होता है।

बारात

इसके बाद बारात यानी दुल्हा वाले दुल्हन के यहाँ जाएँ और वहाँ अक़्द हो। यह बिलकुल ठीक है, जनाब ख़दीजा का अक़्द भी यूँ ही हुआ था।

अल्लाह के रसूल (स0) जनाबे हमज़ा व जनाबे अबुतालिब और बनी हाशिम के साथ जनाबे ख़दीजा के यहाँ गये थें जनाब मासूमा का अक़्द अस्ल में तो अर्श पर हुआ था और दुनिया में मस्जिद में हुआ। अमरुलमोमिनीन तशरीफ ले गये थे।

यह बारात एतेराज़ वाली नहीं है। लेकिन दुल्हा घोड़े पर ज़रूर बैठे, चाहे घोड़े पर बैठना न आता हो, इसी तरह की कुछ और बेकार बेजा रस्में जिनकी कोई सही बुनियाद नहीं है।

हिन्दुओं की रीति–रिवाजों का असर

जब हम इन रस्मों पर ग़ौर करते हैं तो मालूम होता है कि वाक़ई हिन्दुओं के यहाँ जब जाहिलियत के ज़माने में लड़कियों को ग़नीमत के माल की तरह ले जाया जाता था अब वह ज़माना गुज़र गया लेकिन उसकी यादगारें रस्मों की तरह बाक़ी रह गईं। चुनानचे इसका असर सभी रस्मों में देख लीजिये जिस वक़्त से बारात आती है जब तक कि अक़्द न हो जाए उस वक़्त तक उनके साथ मुख़ालिफ सुलूक किया जाता है। वह पानी तक नहीं पा सकते क्योंकि अभी तो लड़ाई है जब लड़ाई जीत ली जाएगी तब सब एक हो जाएंगे। कुछ घरानों में तलवारों का साया भी सर पर किया जाता है।

फिर चौथी की रस्म। इसमें एक टोली इधर होती है और एक टोली उधर। बीच में होते हैं कई फल, एक टोली दूसरे पर हमला करती है और फलों से मारती है चाहे किसी के चोट ही लग जाए मगर कोई परवाह नहीं की जाती। यह यादगार है उस रस्म की, उस ज़माने में फल लोहे के होते थे अब खाने के होते हैं। यह हक़ीक़त में सब हिन्दुओं की रस्में हैं जो मुसलमानों में आ गई हैं इसकी वजह यह है कि अकबर ने अपने ज़माने में कई क़ौमों में शादियाँ कीं। यहाँ तक कि हिन्दुओं के यहाँ भी शादियाँ की और उनकी रस्मों को भी अदा किया। क्योंकि वह एक बहुत बड़ा बादशाह था। नये मज़हब को क़ायम करना चाहता था। अल्लाहु अक्बर में जल्ला जलालहू अपने नाम की मुनासबत से अज़ान की तकबीरों में दाख़िल कर दिया। इसकी वजह से मुसलमानों में यह रस्में पाई जाती हैं। इराक़ जाइये, ईरान जाइये, मिस्र जाइये लेकिन यह रस्में नहीं हैं जो आपके यहाँ पाई जाती हैं।

लिबास

आप अपने यहाँ देखिये। दुल्हा का लिबास जो होता है वह उन आम कपड़ों से अलग होता है जो मुसलमानों में आम तौर से चलते हैं। हक़ीक़त में वह तस्वीर होती है उस लिबास की जो हिन्दुओं में चलता है। फिर सिर्फ रेशम का होना उसका हिस्सा है हालाँकि रेशम का पहनना मर्दों के लिए नाजाएज़ है उसमें लचका, पटठा वग़ैरा भी होता है इससे भी मर्दों में कोई ख़ूबसूरती पैदा नहीं होती।

औरतों का बहाना

कुछ लोग जो पढ़े लिखे या इल्म वाले हैं अफसोस है कि इन मामलों में वह भी आकर

कमज़ोर हो जाते हैं। जब आप उनसे पूछिये कि यह क्या है तो कहेंगे कि औरतों से बस नहीं चलता। इनसे मजबूर हैं लेकिन यह जवाब बिलकुल ग़लत है।

पहले तो मैं कहूँगा कि औरतों का ज़हन बनाने की ज़िम्मेदारी ख़ुद मर्दों पर है। अगर शुरु ही से मर्द इस तरह की तालीम और हिदायत करते रहें तो शादी के मौक़े पर वह ज़िद ही न करेंगी। रिसालतमॉब ने इरशाद फरमायाः

''तुम में से हर शख़्स अपने घर का हाकिम है और हर हाकिम अपनी रिआया को जवाब देने वाला है कि उसने कैसी तरबियत की।

फिर अगर आपने उनके ख़यालात की इस तरह से इस्लाह न की तब भी आप इस बारे में उनकी पैरवी करने वाले क्यों बन जाएं कि वह जो कहें आप करें। हालांकि कुर्आन मजीद में कहा गया है किः

''मर्द ज़िम्मेदार हैं औरतों के।''

लेकिन इस बारे में आपने उनको हाकिम क़रार दे दिया है। आपके यहाँ ''औरतें मर्दों की हाकिम हैं।'' अगर मालूम हो जाए कि आप ऐसा न करेंगे तो हरगिज़ वह ज़िद न करें मगर आप अपने ज़ाती मामलात में तो हद से आगे बढ़ते हैं। किसी वक़्त खाना वक़्त पर तैयार न हुआ त्योरियों पर बल आ गया। कौन कहता है कि शरीअत ने खाना पकाने की ज़िम्मेदारी भी औरतों पर लगाई है। कौन कहता है कि शरीअत ने कपड़े सीने की ज़िम्मेदारी भी औरतों पर लगाई है। कौन कहता है कि शरीअत ने कपड़े सीने की ज़िम्मेदारी औरतों पर लगाई है। यह तो मुख़ालिफ लोग इस्लाम पर बेकार में एतेराज़ करते हैं कि इस्लाम ने औरत को कुछ हक़ (अधिकार) नहीं दिये। वरना इस्लाम ने तो औरत को इतने हक़ दिये हैं जितने किसी मज़हब ने नहीं दिये। अमली हैसियत से इस्लाम ही ने औरत को ज़िन्दगी का साथी क़रार दिया है। हक़ीक़त में यह फर्ज़ तो वह हैं जो मुहब्बत के उसूल के तहत अन्जाम पाना चाहियें। यह तो कामों के सही तरह से करने का तरीक़ा है कि काम बाट लिया जाए। फर्ज़ कीजिये कि घर में एक माँ और एक बेटा है तो क्या होगा? बेटा अगर नौकरी पर जाए तो माँ खाना पकाएगी। इसका मतलब यह नहीं है कि माँ पर बेटे की इताअत वजिब हो गई। यह तो अख़लाक़ की वजह से फर्ज़ हो जाता है। इसी तरह घर में भाई बहन हैं तो वह क्या करें? भाई जिस वक़्त नौकरी पर जाए बहन खाना तैयार करेगी। इसी तरह शौहर और बीवी है तो तो बीवी घर का ख़याल रखेगी। इसका मतलब यह नहीं है कि हुकूमत क़ायम हो गई। औरत ख़िदमत करने वाली नहीं है। आज कल दुनिया वाले पर्दे पर जो एतेराज़ करते हैं तो मैं कहूँगा कि इस्लाम ने औरत को मालदार क़रार दिया है और मर्द को मज़दूर बनाया है। इसके ज़िम्मे ज़िन्दगी के निज़ाम की हैसियत से घर का करोबार है। आप उन बातों में औरत से पैरवी चाहते हैं जिनमें ख़ुदा ने उस पर पैरवी को वाजिब नहीं किया लेकिन जब ऐसे मामले सामने आते हैं जो शादी की रस्मों से जुड़े हैं तो मालूम होता है कि आपसे बढ़कर औरत का कोई इताअत करने वाला नहीं है।

(बाक़ी आइन्दा)